IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

नारीवादी दृष्टिकोण से हिंदी सिनेमा में प्यार और रिश्तों की बदलती गतिशीलता

शोधार्थी

विवेक कुमार

बुंदेलखंड विश्वविद्यालय झांसी

उत्तर प्रदेश

शोध सार

हिंदी सिनेमा ने समाज के लिए निर्धारित प्रेम और रिश्तों की व्यवस्था को सूक्ष्मता से बदलते हुए दिखाया यह बदलाव पुराने समय के रूढ़िवादी प्रेम कथाओं से अलग है जिसमें स्त्री को सिर्फ एक सहयोगी या प्रेम की मूर्ति के रूप में दिखाया जाता था आज की महिलाएं सामान्य निर्णय के अधिकार और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष कर रहे हैं और यह संघर्ष न केवल उनके सामान्य जीवन में बल्कि प्रेम और रिश्तो में भी दिखाई देता है। फिल्मों में दिखाई जाने वाली महिलाएं अब अबला या आदर्श प्रेम की नायिका भर नहीं है वह अब अपने स्वाभिमान स्वतंत्रता और समानता आदि की चाह रखने वाली है। आज की सिनेमा की महिलाएं अपने प्रेम संबंध हो और अपने वैवाहिक संबंधों के प्रति निर्णय लेने में लगभग स्वतंत्र हैं। प्रेम और रिश्तों के संबंध में समाज में प्रचलित पुरुषवादी सोच से उबर कर अपनी नजर से दुनिया देखने का प्रयास कर रही है। हिंदी सिनेमा में हो रहे इस परिवर्तन को उत्कृष्ट ही मनाना चाहिए क्योंकि यह स्त्री संबंध में सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक बदलाव को कहीं न कहीं सकारात्मक स्वरूप प्रदान करता है।

कुंजी शब्द

हिंदी सिनेमा, महिला, संस्कृति, परंपरा, प्रेम, रिश्ता, भाव, पतिव्रता, आदर्श, नैतिकता, जिम्मेदारी, आर्थिक और सामाजिक, त्याग, यौन सम्बन्ध, वैवाहिक, वैश्वीकृत, गतिशीलता

संसार के सभी जीवों में विभिन्न प्रकार के भाव पाए जाते हैं। जैसे प्रेम, क्रोध, ईर्ष्या, घृणा, दया आदि। परंतु मनुष्यों में इन भागों की संख्या और भावों की प्रखरता अन्य जीवों की अपेक्षा अधिक होती है, जैसे प्रेम और क्रोध जानवरों और मनुष्य दोनों में होते हैं परंतु जानवरों के प्रेम और क्रोध का धारा सीमित होता है। जबकि मनुष्य के प्रेम और क्रोध का दायरा अधिक होता है। इसके अतिरिक्त ईर्ष्या, घृणा, दया, करुणा, लोभ आदि भावों का जानवरों में अभाव पाया जाता है। साथ ही मनुष्य अपने भावों के वशीभूत होकर या अपनी आवश्यकतानुसार रिश्ते बनाता है, और फिर उन रिश्तों में भी भावों का आरोपण कर सकता है।

इन भावों में एक प्रमुख भाव है प्रेम का भाव जो रिश्ते बनाने से पहले रिश्ते बने के बाद मनुष्यों पशुओं प्रकृति आदि को आलंबन मानकर उत्पन्न हो सकता है। परंतु हम यहां बात कर रहे हैं दो विपरीत

लिंगी मनुष्यों के बीच के प्रेम की। जिसमें अक्सर प्रेम, आकर्षण, लोभ आदि के बीच यह समझ पाना कठिन होता है कि विपरीत लिंगी मनुष्यों के बीच दिख रहा या स्वयं उनको महसूस हो रहा संबंध क्या वाकई में प्रेम ही है या सिर्फ शारीरिक आकर्षण की भूख? इसको व्याख्यायित करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल अपने निबंध संग्रह चिंतामणि के भाग एक में लिखते हैं कि "लोभ समन्योन्मुख होता है और प्रेम विशेषोन्मुख। कहीं कोई अच्छी चीज सुनकर दौड़ पड़ना लोभ है। किसी वस्तु पर इस प्रकार मुग्ध रहना कि उससे कितनी अच्छी वस्तुओं के सामने आने पर भी उसे विशेष वस्तु से प्रवृत्ति न हटे, रुचि या प्रेम है।"[i]

मनुष्य ने अपने भावों, रिश्तों आदि को समाज, साहित्य और सिनेमा में भी जगह दी है। सिनेमा में प्रेम और रिश्तों पर लंबे समय से बातचीत होती आई है। इसमें यह दिखाने का भी प्रयास हुआ है कि समय सापेक्ष किस प्रकार प्रेम और रिश्तों का स्वरूप बदलता है। साथ ही प्रेम और रिश्तों को निभाने की जिम्मेदारी का बोझ किसके ऊपर अधिक होता है। हिंदी सिनेमा के इतिहास पर जब हम नजर डालते हैं तो पाते हैं कि इसके केंद्र में स्त्री है।

हमारा समाज प्रेम और रिश्तों को निभाने की उम्मीद स्त्रियों से ही अधिक करता है। फिल्मों ने भी इसमें भरपूर योगदान दिया है। स्त्री को राधा जैसी प्रेमिका और सीता जैसी पतिव्रता पत्नी बनाकर। लेकिन समय के साथ-साथ प्रेम के स्वरूप और रिश्तों के स्थायित्व को धक्का लगने लगा। फिल्मों में यह बताने की कोशिश की जाने लगी कि इन सबके निर्वहन की जिम्मेदारी सिर्फ स्त्रियों की ही नहीं बल्कि इनका निर्वहन दोनों तरफ से जरूरी है। बराबरी के रिश्तों के लिए संघर्ष करती स्त्री हमें हिंदी सिनेमा में शुरुआत से ही नजर आने लगती है। उदाहरण के लिए हम वी. शांताराम के निर्देशन में बनी 'दुनिया ना माने' (1937) फिल्म को ले सकते हैं। जिसमें स्त्री को पुरुष की आवश्यकता की वस्तु मानना और अपनी आवश्यकता को जाहिर करने पर उसके चरित्र को संदेह से देखने जैसी पुरुष प्रवृत्ति आदि पर बात की गई है। जब फिल्म की नायिका निर्मला को उसके "लालची मामा-मामी पैसों की एवज में बूढ़े वकील की पत्नी बना देते हैं। स्थितियों से समझौता करने के बजाय यहां नायिका विद्रोह करती है। आम औरत की तरह वह ना तो खुदकुशी की कोशिश करती है, ना किस्मत का लिखा मानकर खामोश रहती है। निर्मला अपनी शर्तों पर जीने की राह निकाल लेती है। पत्नी के हर उस कर्तव्य को करने से इनकार कर देती है, जो समाज ने उसे पर थोपे हैं।"[ii]

इसी तरह जब 'देवदास' (1955), की पारो अपना प्यार ना पा सकने के बाद अधिक उम्र के व्यक्ति से शादी करती है और स्वाभिमान में आकर देवदास से कहती है कि "तुम्हारे माता-पिता हैं मेरे नहीं, उनकी मरजी कुछ नहीं?"[iii] तब वह स्वाभिमानी प्रेमिका के साथ-साथ आदर्श पुत्री की भूमिका भी निभा रही होती है इससे हटकर और प्रेम का पवित्र रूप महबूब खान की फिल्म 'मदर इंडिया' (1957) में दिखाई देता है। जिसकी नायिका राधा का संबंध अपने पति शंभू से पति-पत्नी से कहीं बढ़कर दोस्ती और बराबरी के भी हैं। लेकिन वात्सल्य प्रेम, नैतिकता एवं भारतीय आदर्श के संबंध उसे समय मुखर हो जाते हैं जब राधा का छोटा बेटा बिरजू बदले की भावना से लाला की लड़की को मंडप से उठा ले जाता है। इस स्थिति में प्रेम की जगह बदला होने की वजह से राधा बिरजू को न केवल रुकती है बल्कि उसे बंदूक से गोली भी मार देती है। इस प्रसंग में मां-बेटे का संवाद सुनने योग्य है जो कि इस प्रकार है-

"बिरजू- तू मुझे मार नहीं सकती, तू मेरी मां है।

राधा- मैं एक औरत भी हूं।"[iv]

यही संबंध जब नायक-नायिका के प्रेम के होते हैं और नायक अपने प्रेम के वादे से मुकर जाता है या कहें कि किसी अन्य महिला से प्रेम करने लगता है तो नायिका सिर्फ रूठती है और उस रिश्ते से असहमति गीत के माध्यम से कुछ इस प्रकार व्यक्त करती है-

"वादा हमसे किया, दिल किसी को दिया

बेवफा हो बड़े, हटो जाओ पिया।"[v]

यहां पर ध्यान देना आवश्यक है की नायिका विरोध भी कर रही है। पर रूठे हुए अंदाज में और सीमित में दायरे में रहकर। कारण यह है कि महिलाएं आर्थिक और सामाजिक रूप से पुरुषों पर निर्भर थी। आज भी हैं, परंतु काफी हद तक अब प्रेम, रिश्ते और अपने जीवन के निर्णय के बारे में महिलाएं सोच सकती हैं। लेकिन उस समय सिर्फ छोटे मोटे विरोध के अलाव कोई चारा भी नहीं था। इसी प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए कहूं कि, सन 1968 में रामानंद सागर की फिल्म आई थी 'आंखें' जिसमें नायक सुनील पार्टी में अपनी प्रेमिका को उपेक्षित करके दूसरी शराब की शौकीन महिला के साथ हो लेता है। तभी व्यंग्य के रूप में एक पुरुष उसकी प्रेमिका को कहता है कि यह पहली नजर का प्यार है। तत्पश्चात एक बार फिर से नायिका को प्रेम से विरह की अनुभूति कुछ इस प्रकार होती है–

"गैरों पे करम, अपनों पर सितम

ये जाने वफा, ये जुल्म ना कर

रहने दे थोड़ा भरम।"[vi]

इस फिल्म में गीत गाने वाली महिला के माध्यम से महिलाओं के प्रेम, और शराब की शौकीन महिला के माध्यम से प्रेम और रिश्तों की गतिशीलता का अनुभव होता है।

इसके साथ ही यह भी ध्यान देना होगा कि जिस वक्त प्रेम के लिए महिलाओं की यह छवि घड़ी जा रही थी कि सारे प्रेम के आदर्श, यौन सुचिता और त्याग आदि उसके ही हिस्से आए हैं। उस वक्त पुरुष की इस छवि को भी जोर दिया जा रहा था कि महिला के जीवन, निर्णय, इज्जत आदि की डोर पुरुष वर्ग के हाथ में है। यही कारण है की फिल्मों में मुख्य भूमिका के रूप में महिला बहुत कम आई है। अधिकतर हिंदी फिल्मों की कथाएं महिलाओं को ऐसा पात्र मानकर चलीं हैं, जिनके आसपास पुरुषों का नायकत्व, खलनायकत्व, मर्दानगी, इज्जत, प्रेम और रिश्ते आदि घूमते हैं। परंतु महिलाओं की इच्छा, प्रेम और सार्थक रिश्ते आदि नई सदी के सिनेमा में लगभग बराबरी के साथ प्रस्तुत हुए हैं। हालांकि इस दौर की फिल्मों पर संस्कृति हनन के आरोप लगाते रहते हैं। ऐसी स्थिति में प्रकाश झा की फिल्म 'मृत्युदंड' (1997) पर गौर करना आवश्यक होगा। जिसमें केतकी बनी माधुरी दीक्षित जब अपने शराबी पति के अत्याचार का विरोध करते हुए प्रेम और रिश्तों से ऊपर उठकर उसको जवाब देती हुई रहती है कि "तुम पति हो, परमेश्वर बनने की कोशिश मत करो।"[vii] उस वक्त रिश्तों की आड़ में बनाया गया शोषण का दुष्चक्र ध्वस्त होता प्रतीत होता है।

नए दौर की फिल्मों में निर्देशक कुंदन शाह की फिल्म 'क्या कहना' (2000), महेश मांजरेकर की 'अस्तित्व' (2000), राजकुमार संतोषी की 'लज्जा' (2001), अमित सक्सेना की 'जिस्म' (2003), मधुर भंडारकर की 'फैशन' (2008), मनीष शर्मा की 'शुद्ध देसी रोमांस' (2013) आदि। इन फिल्मों के कथानक में जो बदलाव दिखता है, वह समय के अनुकूल ही है। जैसे 'क्या कहना' फिल्म में नायिका प्रेम के आदर्श पैमाने को तोड़कर शादी से पूर्व यौन संबंध स्थापित करती है और बच्चे को जन्म देती है। और जब उसे सामाजिक तानों से गुजरना पड़ता है तब वह प्रतिरोध में रहती है कि "मैंने कोई पाप नहीं किया है, सिर्फ प्यार किया है।"[viii] यहां पर प्रेम का अर्थ भावनात्मकता से हटकर शारीरिक हो जाता है। जिसकी कल्पना करना पूर्व के सिनेमा में मुश्किल था, वह भी महिला से।

इसी तरह अस्तित्व की नायिका प्रेम पाने की लालसा में अपने वैवाहिक जीवन के इतर प्रेम खोजती है, और वह प्रेम मानसिक तथा शारीरिक दोनों होता है। इससे भी आगे बढ़कर महिला दृष्टिकोण स्पष्ट रूप में हमें दिखता है फिल्म 'लज्जा' में। इसमें नायिका सीता की भूमिका अदा करते–करते समाज के उस तथाकथित बराबरी वाले रिश्ते पर प्रश्न चिन्ह उठाती हुई, परंपरा से हटकर और अपनी अस्मिता की रक्षा करती हुई रहती है कि, "रावण मुझे उठा कर ले गया था उसमें मेरा क्या दोष? हम दोनों पति–पत्नी एक दूसरे से अलग रहे, मैं अकेली अग्नि परीक्षा क्यों दूं? हम दोनों देंगे। सदियों से औरत ही सती होती आई है, क्या कोई मर्द कूदा है अपनी औरत के लिए आग में?"[ix]

यह तो बात हुई रिश्तो में गतिशीलता की लेकिन जब हम प्रेम की गतिशील होने या चलताऊ प्रेम या फिर छद्म प्रेम की बात करते हैं तो, अमित सक्सेना के निर्देशन में बनी फिल्म 'जिस्म' काफी महत्वपूर्ण हो जाती है। क्योंकि इसमें महिलाओं के लिए बना आदर्श प्रेम का सांचा न सिर्फ टूटता है बल्कि षड्यंत्र रूपी प्रेम में भी तब्दील हो जाता है। ऐसा इसलिए कहा जा सकता है, क्योंकि फिल्म की एक महिला सोनिया अपने पति से जायदाद छीनने के लिए कबीर नाम के वकील से झूठे प्रेम का दिखावा करके यौन संबंध बनाती है। और अपना काम निकल जाने के बाद उसे छोड़ देती है। जब वकील उससे इस संदर्भ में पूछता है तो वह दो टूक शब्दों में जवाब देती हुई कहती है कि "सच तो यह है कबीर, कि मैंने कभी तुमसे प्यार नहीं किया, वैसे यह जिस्म प्यार करना जानता भी नहीं है।"[x]

इसे प्रेम कहना गलत होगा चाहे वह स्त्री की ओर से हो अथवा पुरुष की ओर से लेकिन जो भी हो, यह आखिरकार महिलाओं के संदर्भ में गढ़े गए प्रेम और रिश्तो की बदलती स्थिति है। और जब हम इस प्रकार की फिल्में देखते हैं तो, चाहे-अनचाहे प्रेम के लिए समर्पित महिलाओं की वह छवि याद हो आती है जिसमें यह सुनाई देता है कि,

"जोगी हम तो लुट गए तेरे प्यार में

जाने तुझको खबर कब होगी?"[xi]

साथ ही यह परिवर्तन भी समझ आता है कि अब न तो प्रेम, रिश्तों को निभाने वाले पुरुष भोले भाले हैं, और न ही महिलाएं। इस वैश्वीकृत और आधुनिक दुनिया में महिलाएं न केवल पुरुषों के बराबर हैं अपितु कई मामलों में उनसे भी आगे हैं।

---

[i] आचार्य रामचंद्र शुक्ल चिंतामणि भाग एक प्रकाशन अद्वैत पंचशील गार्डन नवीन शाहदरा दिल्ली 11003 2 पृष्ठ संख्या- 52

[ii] सिनेमा में नई शमीम खान प्रकाशन ग्रंथ अकादमी नई दिल्ली 110002 पृष्ठ संख्या- 39

[iii] फिल्म, देवदास, निर्देशक, विमल राय, वर्ष 1955

[iv] फिल्म मदर इंडिया निर्देशक महबूब खान 1957

[v] फिल्म सरस्वती चंद, निर्देशक, गोविंद सरैया, वर्ष- 1968

[vi] फिल्म, आंखें, निर्देशक, रामानंद सागर, वर्ष- 1968

[vii] फिल्म, मृत्युदंड, निर्देशक, प्रकाश झा, वर्ष- 1997

[viii] फिल्म क्या कहना 2000 निर्देशक कुंदन शाह

[ix] फिल्म लज्जा निर्देशक राजकुमार संतोषी वर्ष 2001

[x] फिल्म जिस्म 2003 अमित सक्सेना

[xi] फिल्म शाहिद निर्देशक एस. राम शर्मा वर्ष- 1965